श्रीराम, रामायण और हमारा इतिहास

राजीव रंजन प्रसाद

श्रीराम केवल जन-जन की आस्था नहीं हैं, वे हमारा इतिहास भी है। भारतीय इतिहासकारों ने अतीत के साथ जो छल किया है, उसका परिणाम है कि रामायण और महाभारत को इतिहास सिद्ध करने के प्रयत्न करने पड़ रहे हैं। श्रीराम को वामपंथी इतिहासकारों और नवबौद्धों ने अपने एजेंडे का शिकार बनाने का सर्वदा यत्न किया है। एक ओर जहाँ लाल-लेखन ने भारत के इतिहास को जानते बूझते छठी सदी ई.पू के पश्चात् से ही प्रामाणिक माना है, इस तरह सरलता से हमारा प्राचीन अतीत मिथक बना दिया जाता है। दूसरी ओर नवबौद्धों ने मर्म पर प्रहार करने का प्रयास किया है और मौर्य शासकों के पतन के प्रमुख कारक पुष्यमित्र शुंग को इस आधार पर श्रीराम सिद्ध करने का प्रयास किया है क्योंकि ऐसी संभावना राहुल सांकृत्यायान ने अपनी कृति गंगा से वोल्गा में व्यक्त की थी। संभावनाएं साक्ष्य नहीं होती साथ ही यह भी रेखांकित करें कि इतिहास को केवल सिक्कों-शिलालेखों से ही नहीं गढ़ा जा सकता; साहित्यिक प्रमाणों की भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुत: बुद्धपूर्व के इतिहास पर जैसे ही दृष्टि जाती है, हमें रामायण और महाभारत के असंख्य प्रमाण प्राप्त होने लगते हैं। तुलसीदास इस स्थिति को केवल एक ही पंक्ति में स्पष्ट कर देते हैं कि 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'।

इतिहासकार डॉ. गोवर्धन राय शर्मा अपनी पुस्तक “भारतीय संस्कृति - पुरातात्विक आधार” के अध्याय “विन्ध्य-गांगेय संस्कृति के स्वरूप का उन्मीलन” में लिखते हैं - “इसमें संदेह नहीं कि रामायण-महाभारत काव्यों की रचना का काल अति-प्राचीन है। इनके वर्तमान रूप की रचना के बहुत पूर्व छठी सदी ईसापूर्व में भी राम, दशरथ तथा महाभारत के पात्रों के आख्यान तथा इतिहास के प्रचलन के सांकेतिक साक्ष्य मिलते हैं। रामायण महाभारत सम्बंधी कुछ कथाओं की चर्चा जातकों की गाथाओं में भी मिलती है। इनमें से बहुत सी कथायें बुद्ध से पहले की हैं तथा बौद्धों ने इन्हें ग्रहण कर जातकों का अंश बनाया है”। अर्थात इन जातक कथाओं के श्रीराम वस्तुत: इतिहासपुरुष श्रीराम का अपभ्रंश मात्र हैं।

हमें वास्तविकता जानने के लिए और पहले के कालखण्डों में चलना होगा। डॉ. गोवर्धन राय शर्मा ने अपनी उल्लेखित पुस्तक में लिखा है - “बौद्ध साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है, रामायण और महाभारत सम्बंधी आख्यान सार्वभौम और लोकप्रिय बनते जा रहे थे, इसीलिये बुद्ध ने युद्धकथा चर्चा करने से भिक्षुओं के मना किया था”। इसे ध्यान में रखते हुए बौद्ध ग्रंथ दीघनिकाय भाग-1, ब्रम्हजालसुत्त पृष्ठ-6 का अवलोकन करते हैं। उल्लेखित है - “सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो समणो गौतमो” अर्थात “निर्थक प्रलाप को छोडना उचित है, श्रमण गौतम निरर्थक प्रलाप से विरत रहता है”। यहाँ निरर्थक प्रलाप अथवा “सम्फप्पलापं” क्या है? इसे आचार्य बुद्धघोष ने दीघनिकाय सुमंगलविलासिनी की अठ्ठकथा में स्पष्ट किया है। यहाँ “सम्फप्पलापं” के अंतर्गत महाभारत युद्ध और सीताहरण आदि प्रसंगों को रखा

गया है। सुमंगलविलासिनी, भाग-1, पृष्ठ 93-94 से उद्धरित बुद्ध घोष की व्याख्या अपने मूल रूप में है - "....तस्य द्वै सम्भारा भारतयुद्ध सीताहरणादितिरत्थकथा प्रोभवारता तथारूपी कथाकथनं च"।

यह आज के अध्येताओं का दायित्व बनाता है कि धूल हटा कर अतीत को साफ-स्पष्ट सामने ले कर आए। समस्या यह है कि आज श्रीराम के नाम पर एजेंडा प्रबल है, जानना ही नहीं चाहता कोई कि तुलसी के राम में क्या इतिहास तत्व है। तुलसी भी अपने लेखन में श्रीराम को श्रद्धा से देखते है वे ईश्वर भाव से उन्हे प्रस्तुत करते हैं कि - "तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार। राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार" ऐसे में भक्त के राम और अतीत के राम में तारतम्य जोड़ने का कार्य शोधार्थियों के जिम्मे आता है।

बस्तर के जंगलों में इतिहास पर कार्य करते हुए मुझे आश्चर्य इस बात का था कि यहाँ के एक परिक्षेत्र में बहुत से गावों के नाम ऐसे थे, जिनका अर्थ निकलता है -"राक्षसों की हड्डी" अथवा "राक्षसों की हड्डियों से बना पहाड़"। उल्लेख करना उचित होगा कि श्रीराम ने अपने वनवास का अधिकांश हिस्सा दण्डकारण्य में व्यतीत किया था। गोस्वामी तुलसीदास ने सीता की खोज कर रहे और दण्डकवन में भटक रहे श्रीराम के वृतांत का वर्णन करते हुए उस स्थान के विषय मे लिखा है, जहाँ राक्षस कबन्ध का उद्धार हुआ। रामचरितमानस में उल्लेख है - "संकुल लता बिटप घन कानन। बहुखग मृग तहँ गज पंचानन। आवत पंथ कबंध निपाता। तेंहि सब कही साप कै बाता" अर्थात बहुत से वृक्षों, लताओं से युक्त वह स्थान, जहाँ भांति भांति के पक्षी, मृग और सिंह थे। उसी मार्ग पर श्रीराम ने राक्षस कबंध का जब उद्धार किया तब यह लोक छोडते हुए उसने अपने अभिशाप के विषय में बताया।

वाल्मीकि रामायाण में कबंध वध को विस्तार से वर्णित किया गया है। महर्षि वाल्मीकि कबंध से ही उसके विकराल और विचित्र स्वरूप का भेद कहलवाते हैं कि - "स एवमुक्त: शक्रो मे बाहू योजनमायतौ, तदा चास्यं च मे कुक्षौ तीक्षणदंष्ट्रमकल्पयत। सोअहं भुजाभ्यां दीर्घाभ्यां संक्षिप्यास्मिन वनेचरान, सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान भक्षयामि समंतत:" अर्थात "इंद्र ने मेरी भुजायें एक एक योजन कर दींऔर मेरे पेट में तीखे दाढों वाला मुख उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार मैं अपनी विशाल भुजाओं द्वारा वन में रहने वाले सिंह, चीते, हिरण बाघ आदि जंतुओं को समेट कर खाया करता था"। दोनों ही संदर्भों में से कविता-तत्वों को अलग करें तो कबंध नाम के विचित्र रूप-आकार वाले राक्षस की जानकारी मिलती है। बात कबंध की इसलिये कि रामायण में ऐतिहासिकता की तलाश करते हुए अपनी शोधयात्रा में मैं ऐसे ही एक स्थान पर पहुँचा इसका सम्बंध कबंध से बताया जाता है, यह स्थान था दण्डकवन का रक्साहाडा।

भूगोल के आधार पर यह भी समझें कि पश्चिमी घाट से जुड़े पर्वतों को पुराणों में सह्य पर्वत माना गया है। गोदावरी नदी को सह्यपर्वत से ही निकला बताया गया है। इस अतिविस्तृत पर्वत शृंखला की एक उपशाखा कुञवान पर्वत की पहचान बस्तर क्षेत्र में होती है। कुञवान पर्वत पर ही कबन्ध नामक राक्षस का निवास बताया जाता है। छत्तीसगढ राज्य के नारायणपुर जिले में पहुँच कर यहाँ से कुतुल की ओर आगे

बढ़ते हुए अबूझमाड के घने जंगल आरम्भ हो जाते हैं। कुछ आगे सूनसान पहाड़ी मोड़ पर एक खाई दिखाई पड़ती है, नीचे उतरने पर वह स्थान है जिसे स्थानीय रक्साहाड़ा कहते हैं।

मेरे समक्ष प्रश्न था कि 'रक्साहाड़ा' यह नाम क्या अतीत के घटनाक्रमों की ओर कोई इशारा करता है? यहाँ रामचारित मानस का एक और प्रसंग उल्लेखनीय है जहाँ राक्षसों द्वारा ऋषि मुनियों की बड़े पैमाने पर की गई हत्या एवं भक्षण करने के उपरांत पड़ी हुई हड्डियों का ढेर दिखाई पड़ता है। यह ढेर इतना बड़ा था कि श्रीराम व्याकुल हो जाते हैं, दया के भाव से भर जाते हैं। अरण्य काण्ड में तुलसी के शब्द हैं "अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछि मुनिन्ह लागि अति दाया।" कथनाशय यह है कि उस समय में अनेक ऐसे घटनाक्रम हैं जहाँ हड्डियों के ढेर लगाये जाने के प्रसंग मिलते हैं। इसी की पड़ताल करने मैं रक्साहाड़ा पहुँचा तो पाया कि वहाँ एक पर्वतीय टीला है, जिसके चारो ओर खाईयाँ, पत्थरीले प्राकृतिक परिदृश्य और छोटी छोटी गुफायें दृष्टिगोचर होती हैं। घाटी में थोडा नीचे उतरने पर वह स्थान है जहाँ सफेद चट्टानों का अम्बार है, मान्यता है कि इस स्थान पर ही कबंध सहित मृतक राक्षसों की हड्डियाँ इस बड़ी मात्रा में एकत्रित हुईं कि उसने एक पर्वतीय टीले का स्वरूप ग्रहण कर लिया। अपघटन से पर्वतीय पत्थरों ने स्वयं ने हड्डियों का रूप तथा गुण ग्रहण कर लिया। यहाँ पहुँच कर परिवेश विवेचित करते ही प्रथम दृष्टया पुष्टि होती है कि यह पूरा स्थान फॉसिल अथवा जीवाष्म निर्मित है। सफेद टीले में चारो और असमान और छिद्रभरी अवसादी चट्टाने विद्यमान हैं। पत्थरों को एक नजर देखने भर से उन्हें विभिन्न सामग्रियों का एकत्रीकरण माना जा सकता है जिसमे हड्डियाँ निश्चित रूप से एक बड़ा घटक रही होंगी। सबसे बड़ी बात कि इन पत्थरों को जलाये जाने पर उनसे किसी हड्डी की तीखी गंध भी आती है। यहाँ पर यह परीक्षण मैंने भी किया है, पत्थरों को आग में जलाने का प्रयास करने के कुछ ही देर बाद उनसे वैसी ही गंध आने लगती है मानो कोई हड्डी जलायी जा रही हो। कथानाशय यह है कि श्रीराम को बहुत गहरे तलाशना आवश्यक है अन्यथा हम सत्य और मिथक की भुल-भुलैया में भटकते रह जायेंगे।

मैंने जो कार्य किया वह प्रमाणों की कड़ियों को वैसे ही जोड़ता है जैसा कि हमे रामसेतु को देख कर आभास होता है। भारतीय भूभाग से श्रीलंका की भूमि तक जैसा सेतु अंतरिक्ष चित्रों के माध्यम से आज दिखाई पडता है, जिसका एक बड़ा हिस्सा नंगी आँखों से भी देखा जा सकता है, बिलकुल वैसे ही पुल के बनाये जाने की बात भारतीय महाकाव्य रामायण में उल्लेखित है। इसके बाद भी एजेंडे अपना कार्य करते रहे हैं। आश्चर्य तो तब होता है जबकि सरकारें ऐसे एजेंडे का हिस्सा बना जाती है। वर्ष 2008 मे तत्कालीन कांग्रेस के नेतृत्व में संचालित यूपीए सरकार की ओर से माननीय सर्वोच्च अदालत में एक हलफनामा दाखिल कर रामसेतु को काल्पनिक करार देते हुए कहा गया, "वहां कोई पुल नहीं है। ये स्ट्रक्चर किसी इंसान ने नहीं बनाया। इसी कारण सदियों तक इसके बारे में कोई बात नहीं हुई। न कोई साक्ष्य है।" श्रीराम को काल्पनिक बताने वाली तत्कालीन कॉन्ग्रेस शासित केन्द्र सरकार ने अपने विरोधाभासी हलफनामे में कहा था कि कथित रामसेतु को स्वयं श्रीराम ने अपने एक जादुई बाण से तोड़ दिया था। इसके प्रमाण के रूप में 'कंबन रामायण' और 'पद्मपुराण' के कतिपय आधे-अधूरे और तथ्य से तोड कर

उद्धरणों को पेश किया गया। श्रीराम के जीवन और संघर्षों पर आधारित प्रसिद्ध कृति अभ्युदय के रचनाकार नरेंद्र कोहली ने तत्कालीन सरकार के झूठ की पोल खोलते हुए तब स्पष्ट किया था कि रामायण के अनुसार तो श्रीराम लंका से अयोध्या वायुमार्ग से लौटे थे, तव वे पुल कैसे तुड़वा सकते थे? पुल तुडवाने का औचित्य क्या था? वाल्मीकि रामायण यूपीए सरकार ने नहीं पढी थी, आप अवश्य पढें, इतना ही नहीं यह भी संज्ञान में ले कि वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त कालिदास ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में तथा महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी श्रीराम के आकाश मार्ग से लौटने का ही वर्णन किया है।

इस प्रसंग पर रामचारित मानस में तुलसी लिखते हैं, लंका से श्रीराम माता जानकी और भाई लक्ष्मण व अन्य शुभचिंतकों सहित विमान से अयोध्या के लिए निकलते हैं - "चलत विमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहई सब कोई।" इसी प्रसंग में श्रीराम वह स्थान माता सीता को दिखाते हैं जहाँ रामसेतु का निर्माण हुआ था। तुलसी के शब्दों में "इहाँ सेतु बांध्यो अरु, थापेऊ सिव सुखधाम। सीता सहित कृपानिधि, संभुहिं कीन्ह प्रनाम।" भारतीय वांग्मय से प्रदत्त अनेक साक्ष्यों ने तर्क सम्मत विरोध को धार दी, मुखर विरोध ने अंतत: यूपीए सरकार को अपना हलफनामा वापस लेने के लिये बाध्य कर दिया था।

यह तो बात हुई रामसेतु को ले कर बहस की और राजनीति की। क्या रामसेतु का ऐतिहासिक और वैज्ञानिक आधार भी है? इसे जानने के लिये पुल का समय और रामायण के समय का मिलान एक तरीका है, जिसे विभिन्न अध्ययनों का सामान्यीकरण करें तो कालखण्ड को सात हजार वर्ष पूर्व के लगभग बैठना चाहिये। दूसरा पुल की संरचना और इसके दृष्टिगत मिलने वाले विवरण हमें दृष्टि प्रदान कर सकते हैं। इन दोनों कीनोण से रामसेतु की विवेचना करते हैं। वाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है कि है न केवल नल विश्वकर्मा परम्परा से आते थे अपितु उनके पिता भी जाने माने अभियंता थे। कैसे बना था समुद्र पर पुल इसले लिये वाल्मीकि लिखते हैं - "समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालयै। तस्माद्यैव बध्नंतुं सेतुं वानरपुंगवा:" अर्थात श्रीराम का आदेश पाते ही सारे वानर बड़ी बड़ी चट्टानों को उखाड कर और वृक्षों को समुद्रतट पर ला कर एकत्रित करने लगे। वानरों का सहयोग पा कर नल सौ योजन लम्बा और दस योजन चौडा पुल बांधने में सफल हो गये। यहाँ पुल के लिये निर्मित सामग्री में वे पत्थर तो हैं जो तैरने का गुणधर्म रखते थे परंतु लकडी का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है "आनहु विटप गिरिन्ह के जूथा" अर्थात वृक्ष लाये गये, बडे बडे पत्थर लाये गये। वे पत्थर कैसे थे इसपर गोस्वामी जी ने लिखा है "श्री रघुबीर प्रताप ते, सिंधु तरे पाषाण" अर्थात तैरने वाले पत्थर थे।

पत्थर क्यों तैरे इसपर विज्ञान सम्मत बात करते हैं। कोरल और सिलिका का पत्थर जब गरम होता है तो उसमें हवा कैद हो जाती है जिससे वो हल्का हो जाता है और तैरने लगता है। निश्चय ही नल ने ऐसे पत्थरों को चुनकर यह पुल बनाया, जो नैसर्गिक रूप से वहाँ उपलब्ध थे। कोरल के तरने के पीछे उसकी निर्मिति में जीवाष्म का होना माना जाता है। लेकिन पत्थर केवल कोरल ही नहीं थे। 'प्यूमाइस' नाम के पत्थर को भी जानते हैं जो देखने में भारी-भरकम और मजबूत लगता है परंतु पानी में पूरी तरह से डूबता नहीं है। प्यूमाईस पत्थर ज्वालामुखी के लावा से आकार लेते हुए निर्मित होता है। ज्वालामुखी से बाहर आता हुआ लावा जब वातावरण से मिलता है तो उसके साथ ठंडी या उससे कम तापमान की हवा मिल

जाती है। यह गर्म और ठंडे का मिलाप ही इस पत्थर में कई तरह से छेद कर देता है, जो अंत में इसे स्पॉजी प्रवृत्ति का बना देते हैं। ऐसे पत्थर आसानी से नहीं डूबते। आपको रामेश्वरम जाने पर कोरल और प्यूमाईस दोनो के दर्शन हो जायेंगे।

एक अमेरिकी साईंस चैनल ने विस्तृत रिसर्च के बाद कार्यक्रम प्रस्तुत किया था जिसके अनुसार रामसेतु प्राकृतिक नहीं, मानव-निर्मित है तथा अभियांत्रिकी का नायाब नमूना है। अमेरिकी विज्ञान चैनल द्वारा किये गये शोध के अनुसार पामबन टापू से श्रीलंका के मन्नार टापू तक फैली पुलनुमा चीज इंसानों की बनाई हुई है क्योंकि नीचे रेत की लंबी चादर-सी बिछी है और उसके ऊपर जो पत्थर रखे हैं वो प्राकृतिक नहीं हैं, अपितु उनको इंसानों ने रखा है। अध्ययन के अनुसार 7000 से 7200 वर्ष पूर्व समुद्र का जलस्तर वर्तमान स्थिति से तीन मीटर नीचे था अर्थात पुल पैदल मार्ग बन गया था। भारतीय भूभाग और श्रीलंका की पहुँच व आवागमन के लिये। ग्लोबल वार्मिंग और ग्लेशियरों के पिघलने के कारण जलस्तर बढने लगा, पुल का अधिकांश हिस्सा जलमग्न हो गया और वर्तमान तक की स्थिति सामने है जब आवागमन संभव नहीं, हम केवल अंतरिक्ष चित्रों से ही पुल का अवलोकन कर पा रहे हैं।

ये सभी उदाहरण रामायण की ऐतिहासिकता को गहराई से प्रामाणित करते हैं। जिन्होंने भी श्रीराम को झुठलाना चाहा है और पुरातात्विक साक्ष्य का अभाव कहने का प्रयास किया है उनके लिए इतिहासकार बी बी लाल का कथन उल्लेखनीय है कि - "हमें यह पुरानी कहावत याद रखनी चाहिये कि साक्ष्य का अभाव, अभाव का साक्ष्य नहीं होता। हमें यह भी याद रखना चाहिये कि बुद्ध की ऐतिहासिकता निश्चित तौर पर सिद्ध करने के लिये भी हमारे पास कोई समकालिक आलेख नहीं है। इस सम्बंध में कुछ लोग यह कहकर गुमराह करते हैं कि बुद्ध की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिये समकालीन शिलालेख है। इस सिलसिले में वे लुम्बिनी के शिलालेख की और संकेत करते हैं। किंतु, निश्चय ही यह कोई समकालीन शिलालेख नहीं है। यह तीन सौ वर्षों के बाद अशोक द्वारा स्थापित किया गया था जो जब वह उस जगह पर गया था तो स्थानीय लोगों ने उसे बताया कि वहीं पर बुद्ध का जन्म उस समय हुआ था जब उनकी माता अपने माता-पिता के पास जा रही थीं। और यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिये कि अशोक को यह सूचना देने वाले भी इस बात के प्रत्यक्षदर्शी नहीं थे कि बुद्ध का जन्म वहीं पर हुआ था। उन्होंने अपने माता-पिता से यह सुना होगा और उनके माता-पिता ने अपने माता-पिता से यह सुना होगा और इसी प्रकार पीछे की और चलता गया होगा। इस ढंग से इस कहानी को पिछली कम-से-कम बारह पीढ़ियों ने एक दूसरे को मौखिक तौर पर बताया होगा। तो क्या हम ऐसे साक्ष्य को समकालीन कह सकते हैं? अतः समकालीन आलेख के होने की शर्त पर जोर देना किसी घटना या व्यक्ति की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का उपयुक्त साधन नहीं है।" यह कठोर तर्क है लेकिन श्रीराम तथा रामायण की ऐतिहासिकता के सम्बंध में परोसे जाने वाले कुतर्कों का सर्वोत्तम उत्तर भी है।

राजीव रंजन प्रसाद

प्रख्यात लेखक एवं इतिहासविद्

(बेस्टसेलर उपन्यास 'आमचो बस्तर' सहित दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित)